ISSN No. : 2394-0344 **REMARKING :** VOL-1 * ISSUE-5*October-2014

आधुनिक हिन्दी कविता का समाज शास्त्रीय पक्ष

जी एल जयपाल
प्रवक्ता
हिन्दी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय,
जालोर,राजस्थान

सारांश

पाश्चात्य दार्शनिकों और समाजवेत्ताओं ने मानव स्वभाव को भली प्रकार से समझा है और इसकी अनुगूंज हिन्दी कविता में भी दिखाई देती है। समाज में विरोध, संघर्ष और अव्यवस्था के जो रूप मिलते हैं वे उसकी दशा–दिशा को काव्यगत माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं।वस्तुतः समाज का व्यवहार प्रायःविरोधाभासी रहा है और हिन्दी कविता इस विरोधाभास को उजागर करती है । समाज में रह रहा व्यक्ति अनेक पीड़ाओं और अन्तर्वेदनाओं के साथ जीता है। वह समाज में खुद की उपस्थिति दर्ज करा एकल से समूह की ओर अग्रसर होकर शांति पाना चाहता है।

समाज की अपेक्षाओं, उसके व्यवहार, रूप–कुरूप के पक्षों आदि का आंकलन हिन्दी कविता में साफ और सटीक तौर पर हुआ है। समाज में जो विभेद है, आर्थिक आधार की चौड़ी खाई का जो अन्तर है उसे आधुनिक हिन्दी कविता में प्रखर यथार्थ के साथ सामने रखा गया है। कार्ल मार्क्स का मार्क्सवाद या समाजवाद अथवा हीगल का 'द्वन्द्वात्मक प्रत्ययवाद' जिस सामाजिक ताने–बाने की सामाजिक संरचना का रूप प्रारूप प्रस्तुत करता है, वह प्रगतिवादी हिन्दी कविता से लेकर आधुनिक और समकालीन हिन्दी कविता में पूर्ण प्रासंगिकता के साथ खुले तौर पर प्रस्तुत हुआ है।

हिन्दी कविताओं के समाज–शास्त्रीय रूप को साहित्य के साथ–साथ व्यावहारिक रूप से भी समझना और अनुभव करना आवश्यक है। वास्तव में ये कविताएं समाज के घृणित, पतित रूप से लेकर शुचित, नैतिक और प्रांजल पक्ष को भी उजागर करती हैं।वास्तव में भारतीय समाज का ताना–बाना वर्ण, जातियों, वर्ग और विभिन्न संगठनों आदि के मेलजोल से बना है और हिन्दी कविताएं समाज के तमाम तरह के पहलुओं को सामने रखकर समाज के समन्वय और कल्याण के मार्ग सुझाती हैं।

जनसंचार माध्यमों का, मनोरंजन माध्यमों का, समाज पर क्या प्रभाव पड़ा हैं इसे भी काव्यगत रूप से उकेरा गया है। वस्तुतः आज का जो समाज है उस पर 'सोशियल साइट्स' और टी.वी. तथा इंटरनेट का अधिक प्रभाव है।

मुख्य शब्द : समाजवाद,पूंजीवाद ,सामाजिक संघर्ष, अंतर्वेदना, मनोवृत्ति ,

प्रस्तावना

प्लेटो ने व्यक्ति को समष्टि का अंग माना है। समाज के विकास के बिना व्यक्ति का विकास सम्भव नहीं है। कार्य विशिष्टता का सिद्धान्त समाज के तीनों वर्गों में सामंजस्य बनाये रखने के लिए हैं। व्यक्तियों के अधिकार उनके द्वारा सम्पादित कार्यों व सेवाओं में निहित होते है। उन्हें किसी विशेष अर्थ में व्यक्त नहीं किया गया है।

''वही अजन्मा है, अननुमेय है, अपरिभाषेय है
आप फिर भी उसे पूंजीवाद कहते जाओ तो आपकी मर्जी
और यह विश्वास करो कि अब समाजवाद आ जाएगा तो आपकी मर्जी
आप इसके लिए गोली–डंडे खाना चाहो तो आपकी मर्जी
आप भूख से मरें, बीमारी से मरें तो आपकी मर्जी
वैसे इस देश में पूंजीवाद
इसलिए भी है कि ईश्वर की ऐसी ही मर्जी है
और कौन है जो आज तलक उसकी मर्जी के खिलाफ जा सका है।''[1]

पाश्चात्य दार्शनिकों और समाजवेत्ताओं ने मानव स्वभाव को भली प्रकार से समझा है और इसकी अनुगूंज हिन्दी कविता में भी दिखाई देती है। समाज में विरोध, संघर्ष और अव्यवस्था के जो रूप मिलते हैं वे उसकी दशा–दिशा को काव्यगत माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं।प्रो.के.एल. कमल के अनुसार ''अविश्वसनीयता और कृतघ्नता मैक्यिावेली के अनुसार मानव–स्वभाव के स्थायी तत्व है। उसका मत हैं कि किसी मनुष्य द्वारा ली गई निष्ठा की सौगन्ध तब तक ही वास्तविक रहती हैं, जब तक कि ऐसी निष्ठा उसके अपने प्राणों और सम्पत्ति को कोई नुकसान नहीं पहुंचाती। उसका कथन है कि व्यक्ति उस समय तक आपके लिए अपने प्राणों तक को न्यौछावर करने के लिए तैयार रहेगे, जब तक कि आपको

उसकी आवश्यकता नहीं पड़े। जिस क्षण आपको ऐसे बलिदान की वास्तव में आवश्यकता आ पड़ेगी, वे आपसे दूर हट जायेंगे और विद्रोह कर देंगे।[2]

वास्तव में समाज के अधिकतर लोग उसी प्रकार का व्यवहार करते हैं, जैसा मैक्यिावेली ने कहा है। इस सामाजिक संघर्ष का और अन्यायगत दशाओं का परिहार करना आवश्यक है। विद्याभूषण की कविता ''बदलाव का रास्ता'' में इस बात की पुष्टि है।

''एक दिन तमाम तमंचे
खोल में बंद होंगे,
तनाशाह उम्रकैद होंगे,
सिपहसालार सलामी मंच से नीचे
हाशिये पर उतरेंगे
बहेलिए जेलों में रखे जाएंगे
और चिड़ियों का हक बहाल होगा।
पता नहीं किस साल होगा,
मगर गम खुशहाल होगा,
अच्छी बातें और सही काम
हो जाएंगे तमाम
मगर किस्तों की कतार में
इस संसार में। [3]

समाज में रह रहा व्यक्ति अनेक पीड़ाओं और अन्तर्वेदनाओं के साथ जीता है। वह समाज में खुद की उपस्थिति दर्ज करा एकल से समूह की ओर अग्रसर होकर शांति पाना चाहता है। डॉ. पुरुषोत्तम छंगाणी की कविता ''बदलाव'' इसका उदाहरण है।

''अब मैं
देख सकता हूँ
स्तुतिपरक शब्दों का रीतापन,
अब श्री, मसीहा जैसे सम्बोधन
मुझे नही रिझाते,
यदि कोई मुझे राम कहे
तो मैं उनसे नहीं बोलूंगा
जीवन पर्यन्त निष्चय ही!
मैं पहचान गया हूँ
अपना सामर्थ्य, तुम्हारी नीयत,
अब सीख गया हूँ गुर
तुम्हारे धूप छाँव खेल के,
अब मुझे चाँदनी
हाथ–पांव पर पातना
बड़ा अच्छा लगता है।'' [4]

समाज की अपेक्षाओं, उसके व्यवहार, रूप–कुरूप के पक्षों आदि का आंकलन हिन्दी कविता में साफ और सटीक तौर पर हुआ है। हेमंत कुकरेती की कविता 'गरीब लड़के के रिश्ते' इसी का बयान है।

''वह नहीं जानता कि
एक बड़ा बैंक हैं जिसमें खाता नहीं उसका
और जो गरीबों में भी गरीब है, वह भी उसका कर्जदार है
अज्ञान ही है जो उसे जिंदा रखे है
इच्छाओं को रेत में बदलते देखकर भी
वह गरीब लड़का दूर के भी रिश्तेदारों के करीब है
अमीर आदमी तो अपने भाई के बारे में भी कुछ नहीं जानता।''5

समाज में जो विभेद है। आर्थिक आधार की चौड़ी खाई का जो अन्तर है उसे आधुनिक हिन्दी कविता में प्रखर यथार्थ के साथ सामने रखा गया है। कार्ल मार्क्स का मार्क्सवाद या समाजवाद अथवा हीगल का 'द्वन्द्वात्मक प्रत्ययवा' जिस सामाजिक ताने–बाने की सामाजिक संरचना का रूप प्रारूप प्रस्तुत करता है, वह प्रगतिवादी हिन्दी कविता से लेकर आधुनिक और समकालीन हिन्दी कविता में पूर्ण प्रासंगिकता के साथ खुले तौर पर प्रस्तुत हुआ है। काव्य के अलग और इतर समाज शास्त्रीय पक्ष को समझना ज्यादा जरूरी है। उसमें भी वंचितों और शोषितों के साथ–साथ दमित और प्रताड़ित नारी के जीवन को भी देखा जा सकता है। पूनमसिंह की कविता 'अनब्याही बेटियां' इसी का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।

''देखिए! कुलीनता नैतिकता की सलीबों पर
संस्कृति की दुहाई देती
अपने पितरों पुरखों का तर्पण करती
उन अनब्याही बेटियों की ओर
वे गांधी की अहिंसा
बुद्ध की करुणा नहीं
एक उपनिवेश–सी स्थिति में नियतिबद्ध
परंपरा संचित अवरोधों की विडंबना है। [6]

हिन्दी कविताओं के समाज–शास्त्रीय रूप को साहित्य के साथ–साथ व्यावहारिक रूप से भी समझना और अनुभव करना आवश्यक है। वास्तव में ये कविताएं समाज के घृणित, पतित रूप से लेकर शुचित, नैतिक और प्रांजल पक्ष को भी उजागर करती हैं। हमारा समाज कैसा और किस स्तर का आपराधिक व्यवहार स्त्रियों के प्रति करता है, इसके अनेक उदाहरण हिन्दी कविताओं में देखे जा सकते हैं। राजू रंजन प्रसाद की कविता ''छात्रावास में लड़कियां' समाज के मनोवृत्ति और उनके प्रतिक्रिया स्वरूप बालिका अथवा नारी की मनोवृत्ति की सूचक हैं –

''केवल तभी खुश होती हैं लड़कियां
जब मौसियां थमाती हैं हाथ में
छोटी–सी अर्जी
जिसमें लिखा होता है
उनसे मिलने वालों का नाम
कि लड़कियां दौड़ती हुई आती हैं
और केवल उसी रात सपने देखती हैं
देर रात अपने अधजगे में। [7]

भारतीय समाज में स्त्री को पुरुष के पश्चात का द्वितीयक दर्जा ही प्राप्त रहा है और उसका सम्मान भी पुरुष की मर्जी का गुलाम रहा है।

यद्यपि अनेक समाजवेत्ताओं ने स्त्री के जीवन और वृत्ति में सुधार की त्वरित अपेक्षा की है तथापि हमारा सभ्य समाज इन दशाओं को स्वीकार करने को तैयार नहीं है। भारतीय समाज में दलितों और आदिवासियों को भी 'सभ्य' माने जाने वाले समाज के साथ व्यवहार करने मे मुश्किलें आती रही है। हिन्दी कविता दलितों और आदिवासियों के भी सामाजिक अपमान और समाजगत अन्याय को मुखरित तौर पर प्रकट करती है। इन कविताओं में समाज की मनोवृत्ति और निम्न माने जाने वाले लोगों के प्रति उनकी सोच का पता चलता है कि वर्गगत और जातिगत दंभ उन्हें किस तरह समाजपरक अन्याय करने का 'अघोषित स्वयंभू लाइसेंस' दे डालता है। भारत में अल्पसंख्यकों के हाल पर

भी, उनकी सोच पर भी अनेक कविताएं प्रकाशित हुई हैं। अजय कृष्ण की कविता 'अली हुसैन और जेनरल फिजिक्स' में इसे देखा जा सकता है–

''वहीं छत पर लेटा हुआ अली हुसैन
हल करने में लगा है एक सवाल
महज चाहिए उसे एक सूत्र
जिसमें समेट सके वह,
अम्मीजान की पीड़ाओं को
अपने घर और मुल्क की गरीबी को
अंडों में कसमसाते चूजों को
रोटी के संघर्ष की अनिवार्यता को
और उसी समीकरण में चाहिए उसे वजह
हु हु आती पृथ्वी के प्रति लहकते सूर्य की
उदासीनता की।'' [8]

वास्तव में भारतीय समाज का ताना–बाना वर्ण, जातियों, वर्ग और विभिन्न संगठनों आदि के मेलजोल से बना है और हिन्दी कविताएं समाज के तमाम तरह के पहलुओं को सामने रखकर समाज के समन्वय और कल्याण के मार्ग सुझाती हैं।

ये कविताएं जिस तरह से समाजशास्त्रीय विवेचन करती हैं वे अपने आप में इस कारण भी अद्‌भुत व विशेष हैं क्योंकि इनके पढ़ने मात्र से ही पाठक अपनी सामाजिक स्थिति और अन्य वर्ग व जातियों के प्रति सकारात्मक रूपों पर विचार करने लगता है। जनसंचार माध्यमों का, मनोरंजन माध्यमों का, समाज पर क्या प्रभाव पड़ा हैं इसे भी काव्यगत रूप से उकेरा गया है। वस्तुतः आज का जो समाज है उस पर 'सोशियल साइट्स' और टी.वी. तथा इंटरनेट का अधिक प्रभाव है। समाज में अनेक प्रकार के बदलाव के संकेत ही नहीं मिल रहे वरन् समाज में बड़े पैमाने पर बदलाव हो ही रहे हैं।

यद्यपि कविता मानव मन की थाह लेती है, उसके तमाम पहलुओं को प्रकट करती हैं तथापि उसके साहित्यिक महत्व को ही रेखांकित करने पर जोर दिया जाता रहा है। कविता के समाजशास्त्रीय स्वरूप को समझकर उसकी उपयोगिता तय करना या उस पर विचार करना समूचे समाज के हित में है। अतः हिन्दी कविता के सामाजिक पक्ष को समझकर उसे समाज परक रूप में विवेचित करना कविता के महत्व को बढ़ाने हेतु पर्याप्त हैं।

संदर्भ सूची

1. वाक्, वर्ष 2007, अंक 2, पृस. 179
2. प्रमुख पाश्चात्य राजनीतिक विचारक, प्रो.के.एल.कमल, पृ.स. 143
3. बदलाव का रास्ता, विद्याभूषण, आजकल, सितम्बर 2006, पृ.स. 23
4. बदलाव, डॉ. पुरुषोत्तम छंगाणी, मधुमती, फरवरी, 20011, पृ.स. 35
5. गरीब लड़के के रिश्ते, हेमंत कुकरेती, हंस, जुलाई 2003, पृ.स. 50
6. अनब्याही बेटियां, पूनमसिंह, हंस, अक्टूबर 2011, पृ.सं. 53
7. छात्रावास में लड़कियां, राजू रंजन प्रसाद, आजकल, सितम्बर 2007, पृ.सं. 25
8. अली हुसैन और जेनरल फिजिक्स – अजय कृष्ण, हंस, अप्रेल 2008, पृ.सं. 51